E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
Impact Factor: RJIF 5.12
IJAAS 2020; 2(2): 115-116
Received: 22-02-2020
Accepted: 24-03-2020

डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत), सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत), सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

शास्त्रीय संगीत के कम लोकप्रिय होने के कारण एवं उपाय

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश
आधुनिक युग में भारतीय शास्त्रीय संगीत के अलोकप्रिय होने के बहुत से कारण हैं जिनके कारण आज का युवा शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा पाष्चात्य संगीत को सीखना, सुनना, गाना, बजाना एवं उसमें आनंद लेना पसंद करता है। मेरी छोटी सी कोषिष है– उन कारणों की अभिव्यक्ति को आप सबसे सांझा करना। 1. आज शास्त्रीय ग्रंथों का अभाव 2. राजनैतिक अस्थिरता और राजाश्रय का अभाव 3. संगीतज्ञों का अषिक्षित होना 4. घरानों की संकुचित मानसिकता।

प्रस्तावना
शास्त्रीय संगीत को सीखने की क्रिया सरल हो, इन सभी कारणों को जो इस शोध पत्र में है, दूर करना चाहिए जिससे आज का युवा इस ओर आकर्षित हो। सुगम संगीत के साथ शास्त्रीय संगीत का समावेष कर बंदिषों व गीतों का निर्माण हो यह एक उच्च उपाय है।

शास्त्र शब्द की उत्पति 'शस्त्र' से हुई है, जिसका अर्थ है 'विद्यान' अर्थात् ऐसी नियमावली जिसमें कार्यो और उनके कारणों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया गया हो। अमुक क्रिया करने से क्या परिणाम होगा अथवा अमुक परिणाम प्राप्त करने के लिए क्या क्रिया की जाये, इस सब का विधान शास्त्र में किया जाता है। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत की परिभाषा कुछ यूं होगी :– वह संगीत जो जनरंजन के साथ–साथ सत्यम–शिवम–सुन्दरम जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न नियमों में आबद्ध करके प्रस्तुत किया जायें उसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता है।

शास्त्रीय संगीत केवल स्वान्तह सुखाये के लिए नहीं है अपितु इसकी उत्पति समस्त चराचर सृष्टि के कल्याण हेतु हुयी है। यह कल्याण तभी संभव है, जब सगीतज्ञों को वांछित प्रभाव उत्पन्न करने की विद्या आती हो अर्थात् किस स्तर का कैसा प्रयोग किया जाये कि श्रोता पर मनवांछित प्रभाव पड़े। बहुदा ऐसा देखा गया है सामर्थय का आभाव संगीत में प्रयोक्ता में होता है, किन्तु इसका दोष संगीतकला पर मढ़ दिया जाता है। ज्ञान के आभाव में रूढ़ियों का अन्धानुकरण बड़े से बड़े ज्ञानकोष के औचित्य पर भी प्रश्नचिन्ह लगा देता है। पिछले लगभग बारह–तेरह सौ वर्षो के लगातार विदेशी आक्रमणों ने भारतीय संस्कृति, साहित्य, मान्यताओं, परम्पराओं आदि सभी सामाजिक व्यवस्थाओं को प्रमाणित किया है। ऐसे में भारतीय शास्त्रीय–संगीत इससे अछुता कैसे रह सकता था। शास्त्रीय संगीत जिसका जन्म आदिदेव ब्रह्मा के मुख से हुआ है तथा जो विदेशी आक्रमणों से पूर्व प्रत्येक मन्दिर में गूंजता था। क्या कारण है कि आज धीरे धीरे यह अलोकप्रिय होता जा रहा है। इस प्रश्न पर क्रमबद्ध विचार करने की आवश्यकता है।

शास्त्रीय ग्रन्थों का आभाव
सदा सर्वथा से ही संगीतज्ञ इसके कालत्मक पक्ष की ओर ध्यान देते रहे है। जिससे इसका शास्त्रीय पक्ष प्रायः उपेक्षित ही रहा है। यही कारण है कि पिछली बीस–पच्चीस शताब्दियों में सामवेद, नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, संगीत रत्नाकर, संगीत पारिजात, स्वरमेल कलानिधि आदि कुछ ही ऐसे ग्रन्थ हैं जो अपने समय से लेकर बाद के कई वर्षो तक आधार ग्रन्थ के रूप में मान्य रहे हैं। यदि देखा जाये तो प्रायः महत्वपूर्ण ग्रन्थ कई कई शताब्दियों के बाद लिखे गये है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि संगीत के क्षेत्र में लेखन क्रिया बहुत कम हुई और जो हुई भी वह प्रायः अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों का सवर्धन और पुर्नउल्लेख ही रहा है, जिससे सांगीतिक सिद्धांत समान्य संगीतज्ञों विचारणीय विजय नहीं रहे और सदा असपष्ट ही रहे। जिससे शने शनेः शास्त्रीय संगीत गूढ़ से गूढ़ होता गया और जनसाधारण की पकड़ से दूर होता गया।

आधुनिक काल में इस ओर कुछ ध्यान दिया गया है। जिससे पुस्तकों तथा विचारकों की संख्या ही नहीं बढ़ी अपितु विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी इस विषय पर निबन्ध, लेख आदि लिखे जाने लगे है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि जनसाधारण को सरल से सरल भाषा में गहन से गहन सिद्धान्तों की व्याख्या करके स्पष्ट रूप से समझाया जाये जिससे उनकी अभिरूचि संगीत क्षेत्र में और अधिक बढ़े। विदेशी संस्कृति एंव् मान्यताओं का प्रतिकूल प्रभाव :–

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि पिछली कई शताब्दियों से भारतवर्ष पर अनेक विदेशी आक्रमण हुये जिसके कारण राजनैतिक रूप से अस्थिरता ने यहाँ की मौलिक संस्कृति को छिन्न–भिन्न कर दिया तथा आक्रमणकारियों की संस्कृति ने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया। ऐसे में संगीत का प्रयोजन आध्यात्म से हटकर विलासिता का हो गया। अब मन्दिरों के स्थान पर संगीत, राज दरबारों की शोभा हो गया। पहले संगीतज्ञ भक्ति और ईश्वर के लिये गाता था। अब उसे अपने आश्रयदाता, सुलतान अथवा बादशाह के लिये गाना पड़ा जो प्रायः विलासी हुआ करते थे। अतः संगीत, आध्यात्म को छोड़कर विलासिता से होता हुआ अश्लीलता की सीमा तक जा पहुँचा, जिससे वह न केवल जनसाधारण की आरूचि का कारण बना अपितु संगीत और संगीतकार घृणा के पात्र समझे जाने लगे।

यदि भक्तिकाल के संगीत पर दृष्टिपात किया जाये तो यह तथ्य सामने आता है कि सूर, कबीर, मीरां, तुलसी, स्वामी हरिदास आदि ऐसे महान् संगीतज्ञ हुये जिन्होंने उत्तम साहित्य को माध्यम बनाकर जाने अनजाने संगीत जगत की सेना की और जनसाधारण में अत्याधिक लोकप्रियता प्राप्त की। इनके रचे हुये पद आज भी उतनी ही श्रृद्धा से जनसाधारण द्वारा गाये जाते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुये यह सिद्ध होता है कि शास्त्रीय संगीत तभी लोकप्रिय हो सकता है जब उसका भेद यहाँके सामाजिक परिवेश तथा संस्कृति के अनुकूल बैठता हो। इस क्षेत्र में पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, स्व0 कुमार गांधर्व आदि ऐसे नाम हैं जिनके अथक परिश्रम ने संगीत जगत पर छाये हुये कुहासे को बहुत हद तक दूर किया है तथा पं0 भीमसेन जोशी, पं0 जसराज, हरिओमशरण, अनूप जलोटा आदि कितने ही ऐसे कलाकार हैं जो इनसे प्रेरित होकर इस मशाल को न केवल थामे हुये हैं बल्कि आगे से और आगे ले जाने में प्रयासरत हैं।

राजनैतिक अस्थिरता और राजाश्रय का आभाव

यथा राजा तथा प्रजा। पिछले एक हजार वर्ष तक भारतवर्ष में प्रायः सुदृढ़ शासन का आभाव रहा है। एक के बाद एक राजा का सिंहासन से उतारा जाना तथा दूसरे का अपनी पकड़ सुदृढ़ बनाने के लिये सदा युद्धरत रहना कला और संगीत के प्रति उपेक्षा का प्रमुख कारण बना, जिससे संगीत और संगीतकारों को राज्य की ओर से प्रोत्साहन का आभाव रहा। जब–जब समाज ने राजनैतिक अस्थिरता आयी, तब–तब अमीर खुसरों, तानसेन, बैजूबावरा, गोपाल नायक आदि जैसे महान् संगीतज्ञों को कला साधना का उपयुक्त अवसर और प्रचार के लिये उचित वातावरण प्राप्त हुआ लेकिन औरंगजेब का समय आते–आते यह स्थिति शोचनीय हो गयी। संगीत एवं संगीतज्ञों का पतन जितना इस काल में हुआ उतना शायद पूर्व में कभी भी नहीं हुआ होगा। विपरीत परिस्थितियोंवश इसी काल में इस कला एवं कलाकारों को निकृष्ट समझा जाने लगा तथा हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक लगभग यही स्थिति बनी रही। इतिहास का कटु अनुभव इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि यदि शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाना है तो अन्य बातों के अतिरिक्त सर्वप्रथम इसे लोकप्रिय बनाने के लिये शासक को आगे आना पड़ेगा। जिससे संगीत क्षेत्र के कलावंत तथा शास्त्रकार प्रोत्साहित होकर सम्मानित एवं प्रतिष्ठित हों और संगीत कला के प्रति समाज में जागृति और श्रद्धाभाव उत्पन्न हो।

संगीतकारों का अशिक्षित होना

संगीत इतिहास के मध्य युग आते–आते प्रायः ऐसे संगीतकारों का आभाव होने लगा जो शास्त्रपक्ष के भी ज्ञाता हो। उर्दू, फारसी जैसे विदेशी भाषाओं के प्रचार में आने का कारण संगीत के संस्कृत ग्रन्थ लुप्त प्रायः होने लगे थे और विभिन्न कारणोंवश संगीतकला ऐसे लोगों के हाथ में पहुंच गयी, जिनकी शिक्ष का स्तर नगण्य था। ऐसे में इस कला का सैद्धांतिक पक्ष अनदेखा एवं अछूता रह गया। संगीत का प्रयोजन उसकी उपादेयता वांछित उद्देश्य की प्राप्ति, यह सब बातें गौण हो गयीं। स्वरों के माध्यम से चमत्कार दिखाने की लालसा ने संगीत से अच्छे साहित्य को पृथक कर दिया। आधुनिक–काल में भी यह स्थिति कुछ विशेष परिवर्तित नहीं हुयी हैं। विद्यालयों में जो शिक्षा दी जा रही है वह कलाकार उत्पन्न करने में सक्षम नहीं है तथा जो संगीतज्ञ घरानेदार शिक्षा पद्धति से आ रहे हैं, वह आज भी बहुत अधिक शिक्षित नहीं हैं, जिसके कारण उन्हें उचित सम्मान नहीं मिल पा रहा। क्योंकि साहित्य का ज्ञान न होने के कारण वह बंदिशों के शब्दों को छुपाकर गाते हैं, जिस कारण श्रोताओं पर उसके गायन का साकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता, और बहुधा जनसाधारण की दृष्टि में शास्त्रीय संगीत की छवि हास्यपद हो जाती है।

आवश्यकता इस बात की है कि संगीतकला के साथ–साथ संगीतज्ञ सुशिक्षित भी हों, जिससे वह बंदिशों के शब्दों एवं उनमें छिपे भावों को समझने तथा अभिव्यक्त करने में सामर्थ हो सकें।

घरानों की संकुचित मानसिकता

जैसा कि सर्वविदित है संगीत में घरानों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जहाँ एक ओर इस पद्धति के कारण संगीतकला अपने उत्कर्ष की ओर अग्रसर हुयी वही आगे चलकर संकीर्ण मानसिकता के कारण संगीत कला का ह्रास भी हुआ। जहाँ घराना प्रमुख अपने घराने की विशिष्ट शैली का निर्माण करते थे वहीं उनके समस्त शिष्य अपने गुरू की उस शैली जैसे– स्वर लगाने का ढंग, ध्वनि की गंभीरता, कष्ठ की मिठास, कलात्मकता, चमत्कार आदि की नकल करने का पूर्ण प्रयास करते थे परन्तु सफलता सभी को नहीं मिल पाती थी, इससे गुरू के गुणों के साथ–साथ शिष्य उनके अवगुणों जैसे नाक से आवाज निकालना, विभिन्न मुखमुद्रा तथा विभिन्न हावभाव आदि का प्रदर्शन करना इत्यादि इन सब बातों का भी आत्मसात करने का प्रयत्न करना। क्योंकि उसे अपने घराने के अतिरिक्त दूसरे घराने का संगीत सीखना तो दूर सुनने तक की भी अनुमति नहीं थी। और न ही कोई शिष्य अपनी निजि प्रतिभा को उभारने का प्रयत्न कर सकता था। घरानो की आपसी प्रतियोगिताओं ने इसी संकीर्णता के कारण आपसी वैमनस्य को जन्म दिया। जिससे एक घराना दूसरे घराने को नीचा दिखाने में प्रयत्नरत रहने लगा।

अगर घरानेदार संगीतज्ञों का दृष्टिकोण रचनात्मक हो तो इन उपरोक्त दोषों को दूर करके घराना पद्धति से अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है और शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. सुशील चौबे, हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न, पृष्ठ संख्या 72–73
2. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत निबंधावली, पृष्ठ संख्या 25–27